DSSSB TGT & PGT

Part-B

SCHOLAR BATCH

संस्कृत

महाभारत (विदुरनीति) उद्योग पर्व अध्याय 38

PART-02

LIVE 26-08-2024 05:00 PM

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश

विदुर उवाच ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ १ ॥

विदुरजी कहते हैं- राजन् ! जब कोई (माननीय) वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्तिके प्राण ऊपरको उठने लगते हैं; फिर जब वह वृद्धके स्वागतमें उठकर खड़ा होता और प्रणाम करता है, तब प्राणोंको पुनः वास्तविक स्थितिमें प्राप्त करता है॥ १॥

पीठं दत्त्वा साधवे ऽभ्यागताय
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २ ॥

धीर पुरुषको चाहिये, जब कोई साधु पुरुष अतिथिके रूपमें घरपर आवे, तब पहले आसन देकर एवं जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी स्थिति बतावे, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन करावे ॥ २॥

यस्योदकं मधुपर्क च गां च
न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे।
लोभाद् भयादथ कार्पण्यतो वा
तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३ ॥

वेदवेत्ता ब्राह्मण जिसके घर दाताके लोभ, भय या कंजूसीके कारण जल, मधुपर्क और गौको नहीं स्वीकार करता, श्रेष्ठ पुरुषोंने उस गृहस्थका जीवन व्यर्थ बताया है ॥ ३॥

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी

स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च।

सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च

भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४ ॥

वैद्य, चीरफाड़ करनेवाला (जर्राह), ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भहत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता-ये यद्यपि पैर धोनेके योग्य नहीं हैं, तथापि यदि अतिथि होकर आवें तो विशेष प्रिय यानी आदरके योग्य होते हैं ॥ ४॥

अविक्रयं लवणं पक्वमन्नं

दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च ।

तिला मांसं फलमूलानि शाकं

रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥ ५ ॥

नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकारकी गन्ध और गुड़-इतनी वस्तुएँ बेचने योग्य नहीं हैं ॥ ५॥

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः

प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः ।

निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये

त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ६ ॥

जो क्रोध न करनेवाला, लोष्ट, पत्थर और सुवर्ण- को एक-सा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रहसे रहित, निन्दा-प्रशंसासे शून्य, प्रिय-अप्रियका त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (संन्यासी) है ॥ ६ ॥

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः

सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः

वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो।

धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ ७॥

जो नीवार (जंगली चावल), कन्द-मूल, इंगुदीफल और साग खाकर निर्वाह करता है, मनको वशमें रखता है, अग्निहोत्र करता है, वनमें रहकर भी अतिथिसेवामें सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी (वानप्रस्थी) श्रेष्ठ माना गया है॥ ७॥

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥ ८ ॥

बुद्धिमान् पुरुषकी बुराई करके इस विश्वासपर निश्चिन्त न रहे कि मैं दूर हूँ। बुद्धिमान्‌की (बुद्धिरूप) बाँहें बड़ी लंबी होती हैं, सताया जानेपर वह उन्हीं बाँहोंसे बदला लेता है ॥ ८ ॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ९॥

जो विश्वासका पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं; किंतु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वाससे जो भय उत्पन्न होता है, वह मूलका भी उच्छेद कर डालता है ॥ ९ ॥

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।

श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥ १०॥

मनुष्यको चाहिये कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियोंका रक्षक, सम्पत्तिका न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियोंके निकट मीठे वचन बोलनेवाला हो, परंतु उनके वशमें कभी न हो ॥ १०॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः ॥ ११ ॥

स्त्रियाँ घरकी लक्ष्मी कही गयी हैं। ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, आदर के योग्य, पवित्र तथा घरकी शोभा हैं; अतः इनकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥ १२॥
भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्।

अन्तःपुरकी रक्षाका कार्य पिताको सौंप दे, रसोईघरका प्रबन्ध माताके हाथमें दे दे, गौओंकी सेवामें अपने समान व्यक्तिको नियुक्त करे और कृषिका कार्य स्वयं ही करे। इसी प्रकार सेवकोंद्वारा वाणिज्य-व्यापार करे और पुत्रोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी सेवा करे ॥

अद्ध्योऽग्निर्बह्मत: क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ १३ ॥

तेषां सर्वत्रगं तेज: स्वासु योनिषु शाम्यति ।

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा पैदा हुआ है। इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी अपने उत्पत्तिस्थानमें शान्त हो जाता है ॥

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥ १४॥

क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते।

अच्छे कुलमें उत्पन्न, अग्निके समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठमें अग्निकी भाँति शान्तभावसे स्थित रहते हैं ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥ १५ ॥

स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।

जिस राजाकी मन्त्रणाको उसके बहिरंग एवं अन्तरंग कोई भी मनुष्य नहीं जानते, सब ओर दृष्टि रखनेवाला वह राजा चिरकालतक ऐश्वर्यका उपभोग करता है ॥

करिष्यन् न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥ १६ ॥

धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ।

धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्योंको करनेसे पहले न बतावे, करके ही दिखावे। ऐसा करनेसे अपनी मन्त्रणा दूसरोंपर प्रकट नहीं होती ॥

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ १७ ॥

अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ।

पर्वतकी चोटी अथवा राजमहलपर चढ़कर एकान्त स्थानमें जाकर या जंगलमें तृण आदिसे अनावृत स्थानपर मन्त्रणा करनी चाहिये ॥

नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥ १८ ॥

अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान्। भारत !

भा भारत ! जो मित्र न हो, मित्र होनेपर भी पण्डित न हो, पण्डित होनेपर भी जिसका मन वश में न हो, वह अपनी गुप्त मन्त्रणा जानने के योग्य नहीं है ॥

नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात् सचिवमात्मनः ॥ १९ ॥

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।

कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥ २०॥

धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः ।

गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २१ ॥

राजा अच्छी तरह परीक्षा किये बिना किसीको अपना मन्त्री न बनावे; क्योंकि धनकी प्राप्ति और मन्त्रकी रक्षाका भार मन्त्रीपर ही रहता है।

जिसके धर्म, अर्थ और कामविषयक सभी कार्योंको पूर्ण होनेके बाद ही सभासदगण जान पाते हैं, वही राजा समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ है। अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाले उस राजाको निस्संदेह सिद्धि प्राप्त होती है॥ १९-२१॥

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि ॥ २२ ॥

जो मोहवश बुरे (शास्त्रनिषिद्ध) कर्म करता है, वह उन कार्योंका विपरीत परिणाम होनेसे अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठता है ॥ २२

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३॥

उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किंतु उन्हींका अनुष्ठान न किया जाय तो वह पश्चात्तापका कारण माना गया है ॥ २३ ॥

अनधीत्य यथा वेदान् न विप्रः श्राद्धमर्हति।

एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ २४॥

जैसे वेदोंको पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्धकर्म करवाने का अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय नामक) छः गुणोंको जाने बिना कोई गुप्त मन्त्रणा सुननेका अधिकारी नहीं होता ॥ २४ ॥

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५ ॥

राजन् ! जो सन्धि, विग्रह आदि छः गुणोंकी जानकारीके कारण प्रसिद्ध है, स्थिति, वृद्धि और हासको ' जानता है तथा जिसके स्वभावकी सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजाके अधीन पृथ्वी रहती है॥ २५ ॥

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिण: ।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥ २६ ॥

व जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते, जो वे आवश्यक कार्योंकी स्वयं देखभाल करता है और खजानेकी भी स्वयं जानकारी रखता है, उसकी पृथ्वी ॥ | पर्याप्त धन देनेवाली ही होती है॥ २६ ॥

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान् नैकः सर्वहरो भवेत् ॥ २७॥

भूपतिको चाहिये कि अपने 'राजा' नामसे और राजोचित 'छत्र' के धारणसे संतुष्ट रहे। सेवकोंको । पर्याप्त धन दे, सब अकेला ही न हड़प ले ॥ २७॥

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा। ।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २८ ॥

ब्राह्मणको ब्राह्मण जानता है, स्त्रीको उसका पति जानता है, मन्त्रीको राजा जानता है और राजाको भी। राजा ही जानता है॥ २८ ॥

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः ।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव ॥ २९ ॥

वशमें आये हुए वधके योग्य शत्रुको कभी छोड़ना नहीं चाहिये। यदि अपना बल अधिक न हो तो नम्र होकर उसके पास समय बिताना चाहिये और बल होनेपर उसे मार ही डालना चाहिये; क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है॥

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ ३० ॥

देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगीपर होनेवाले क्रोधको प्रयत्नपूर्वक सदा रोकना चाहिये ॥ ३० ॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ ३९ ॥

मूर्वोद्वारा सेवित निरर्थक कलहका बुद्धिमान् पुरुषको त्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे लोकमें यश मिलता है और अनर्थका सामना नहीं करना पड़ता ॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।

न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ठं पतिमिव स्त्रियः ॥ ३२ ॥

जिसके प्रसन्न होनेका कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है,

ऐसे राजाको प्रजा उसी भाँति नहीं चाहती, जैसे स्त्री नपुंसक पतिको ॥ ३२॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३३ ॥

बुद्धिसे धन प्राप्त होता है और मूर्खता दरिद्रताका कारण है- ऐसा कोई नियम नहीं है। संसारचक्रके वृत्तान्तको केवल विद्वान् पुरुष ही जानते हैं, दूसरेलोग नहीं ॥ ३३ ॥